RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-11
November -2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]

आर्थिक विकास में सामाजिक एवं संस्थानिक तत्वों की भूमिका

डॉ0वीना उपाध्याय

असि0प्रो0–अर्थशास्त्र विभाग करामत हुसैन महिला पी0जी0कालेज लखनउ,(उ0प्र0)

विकास का सामान्य अर्थ, पारिस्थैतिकीय दृष्टिकोण से उपयुक्त, दीर्घकाल तक अक्षुण्ण रहने वाला विकास है। अर्थात इसमें विकास निर्वाह योग्य माना गया है, जो वर्तमान पीढ़ियों की आवश्यकता पूर्ण करते हुए भविष्य के लिए भी बना रहे। इसके अर्न्तगत सम्मिलित पारिस्थैतिकीय, जैव मनुष्य, समुदाय और पर्यावरण के बीच ऐसा संतुलन विकसित हो, जिससे दोनों अनवरत, काल तक बना रहे।मानव का सम्पूर्ण विकास कार्य धरातल पर ही सम्पन्न होता है तथा उसके गुणात्मक एवं ऋणात्मक दोनों ही परिणाम धरातल पर ही दृष्टिगोचर होते हैं। इसलिए विकास में समाहित क्षेत्रीय आयाम की अवधारणा प्रादेशिक नियोजन और क्षेत्रीय आर्थिक विकास में मध्यस्थ की भूमिका अदा करती प्रतीत होती है। अतैव स्पष्ट है कि 'क्षेत्र का अभिप्राय किसी भी आकार,प्रकार, विस्तार तथा स्तर के भू–वैन्यासिक संगठन से है। इसमें मानव कार्यकलाप के सम्पूर्ण स्वरूप एवं आर्थिक विकास के वितरण प्रतिरूप की अवधारणा समाहित रहती है।राय एवं पाटिल के अनुसार, क्षेत्रीय विकास को बहुस्तरीय, बहुआयामी, बहुप्रखण्डीय एवं बहुवर्गीय संकल्पना माना है। बहुवर्गीय संकल्पना के रूप में क्षेत्रीय आर्थिक विकास विकेन्द्रीकरण से संबंधित है। इसके अन्तर्गत ग्रामीण विकास के विभिन्न भू–वैन्यासिक पदानुक्रम–सेवा केन्द्र, विकासखण्ड, तहसील, जनपद आदि है। इसी प्रकार बहुप्रखण्डीय संकल्पना के अन्तर्गत ग्रामीण आर्थिकी के विभिन्न प्रखण्ड–कृषि, उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, विद्युतीकरण, आदि का विकास सम्मिलित है। बहुवर्गीय संकल्पना के रूप में इसके अन्तर्गत ग्रामीण जनसंख्या के निम्न आय के विभिन्न वर्गो एवं उपवर्गो जैसे भूमिहीन, कृषिमजदूर, दस्तकार, लघु एवं सीमान्त कृषक, अनुसूचित जाति एवं जनजाति आदि का सामाजिक एवं आर्थिक विकास सम्मिलित है।

यद्यपि सामाजिक–आर्थिक विषमता की अवधारणा पर सभी सामाजिक वैज्ञानिकों ने अध्ययन प्रस्तुत किया है, परन्तु मैक के द्वारा इसके ऊपर एक सबल अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जो विषमता के अध्ययन में महत्वपूर्ण उपादान है। बाद में हार्वे, स्मिथ,कीट्स तथा अन्य भूगोल वेत्ताओं द्वारा भी इसी तथ्य का अध्ययन किया गया । इससे विकास की विशेष गति का पता लगता है। इसमें आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक विकास निहित है। जैव शास्त्रियों ने भी विकास प्रक्रिया में वातावरण संरक्षण की उपादेयता पर बल दिया है। विकसित देशों में प्रदूषण नियंत्रण एवं संसाधन संरक्षण को बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान दिया है, क्योंकि विकासशील क्षेत्रों के लिए मृदा संरक्षण, जलसंरक्षण एवं विकास की गुणवत्ता पर मुख्य ध्यान दिया गया है। ऐसा माना जाता है कि किसी क्षेत्र का विकास स्तर इसी से मापा जा सकता है कि वहां के जैविक संतुलन के लिए किस स्तर तक ध्यान दिया जा रहा है। वुड महोदय ने विकास को भूगोल का एक अंग मानते हुए इसके महत्व एवं अभिप्राय को स्पष्ट किया है गोसल एवं कृष्णनने बताया कि भौगोलिक क्षेत्र में विकास का अर्थ है– राष्ट्रीय धारा में आर्थिक, राजनीतिक सुदृढ़ता तथा सामाजिक उन्नति और वातावरणीय सुधार। आर्थिक उन्नति में लोगो के जीवन स्तर तथा मानव शक्ति का प्रयोग आदि अभिहीत है। सामाजिक न्याय, आबादी तथा सामाजिकता आदि सामाजिक विकास के प्रमुख कारकों में आते हैं। प्रशासनिक क्षमता, शक्ति विघटन तथा जागरूकता आदि जनकल्याण कार्य राजनैतिक क्षेत्र में आते हैं। भूमि नियंत्रण, जल शुद्धीकरण तथा प्रदूषण निवारण आदि वातावरणीय क्षेत्र में आते हैं।

महबूबुलहक ने मानव विकास प्रतिमान के चार आवश्यक घटक समता, सततीकरण, उत्पादकता तथा सबलीकरण को मान्यता दी है। समता, समाज में मांगों के अवसरों को बढ़ाकर आय के न्यायसंगत वितरण पर बल देती है। जबकि सततीकरण भौतिक, मानवीय, वित्तीय तथा पर्यावरणीय पूंजी व संसाधनों के सततीकरण पर बल देती है, जिससे कि विकास अवसरों का लाभ वर्तमान पीढ़ी और भावी पीढ़ी दोनों ले सकें। उत्पादकता, व्यक्तियों में निवेश पर बल देती है, जिससे कि वे अपनी सम्पूर्ण क्षमताओं को प्राप्त कर सकें। सबलीकरण शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य क्षेत्रों में बढ़े हुए निवेश की मांग करता है, जिससे कि लोग अपनी क्षमताओं का उपयोग करते हुए विकास लाभों से लाभान्वित हो सकें।

क्षेत्रीय विकास अनेक तत्वों–प्राकृतिक संसाधन, मानव संसाधन (श्रम), पूंजी, तकनीक और सामाजिक तथा संस्थानिक तत्वों से प्रभावित होता है। यद्यपि प्रतिष्ठित तथा नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने ग्रामीण विकास के लिए मुख्य रूप से प्राकृतिक संसाधनों को ही जिम्मेदार माना है। उनके अनुसार विकास प्रक्रिया में श्रम, पूंजी और तकनीक तथा सामाजिक एवं संस्थानिक तत्वों का कोई प्रमुख योगदान नहीं होता है। उनका मानना है कि विकास के लिए संस्थानिक संरचना का विकास आवश्यक नहीं है। वास्तव में ये अर्थशास्त्री विकास की प्रक्रिया में न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप का तर्क देते हैं और बाजार की अबंध नीति की वकालत करते हैं। कार्ल मार्क्स एक ऐसा संस्थानिक अर्थशास्त्री रहा है, जिसने विकास की प्रक्रिया में

RRIJM 2015, All Rights Reserved

सामाजिक एवं संस्थानिक तत्वों की भूमिका पर प्रकाश डाला है। एक आर्थिक संगठन किसी अर्थव्यवस्था के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह उत्पादन प्रक्रिया में निजी उद्यमी को आगे आने की प्रेरणा देता है एवं उनके लिए उचित पृष्ठभूमि का सृजन करता है। यह देश में नागरिक क्षमताओं का विस्तार करता है। सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाएं जिसमें सहकारिता भी शामिल है, आदि अर्थव्यवस्था के लिए विकास का पथ प्रदर्शित करती है।

विकास की प्रक्रिया में संस्थाओं एवं संगठनों का प्रमुख योगदान है जो कृषि एवं क्षेत्रीय विकास को भिन्न–भिन्न तरीकों से प्रभावित करते हैं। इनमें सकारात्मक परिवर्तन उत्पादन एवं विकास में परिवर्तन लाता है। यद्यपि कि इन कारकों का विकास पर पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना करना कठिन होता है, परन्तु ग्रामीण विकास की प्रक्रिया में ये अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सरकार द्वारा भारत के कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिए निकट भविष्य में अनेकों संगठनों की स्थापना की जा रही है। सरकार द्वारा विकास को एक प्रमुख मुद्दे के रूप में देखा जा रहा है। ग्रामीण लोगों के जीवन–स्तर में सुधार हेतु सरकार द्वारा अनेकों प्रयास किए जा रहे हैं। संस्थानिक स्तर पर सम्पत्ति एवं संविदा के नियम आर्थिक विकास पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि–

(क) एक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का क्या कर सकता हैं?
(ख) दूसरे उसकी सम्पत्ति का क्या कर सकते हैं?
(ग) वह किस तरह की आर्थिक गतिविधियों में अपने को नियोजित कर सकता है?

कुछ समाज जैसे जापान आदि अपने यहां बिना किसी अवरोध के व्यक्तिगत फर्मों एवं निजीकरण को बढ़ावा देते हैं, जबकि दूसरे देश इस पद्धति के लिए कड़ा निर्देश लागू करते हैं। ये सभी प्रश्न सरकार की प्रभावोत्पादक व्यापारिक गतिविधियों से संबंधित है। प्रश्न यह है कि कैसे विभिन्न प्रकार की व्यापारिक गतिविधियां सरकार द्वारा संचालित की जाती हैं? कैसे करारोपण, तटकर, अंशदान एवं अन्य मदें इन क्रियाओं को हतोत्साहित करती हैं? और दूसरे को प्रोत्साहित करती है? आर्थिक विकास की प्रक्रिया में करारोपण और उत्तराधिकार के नियम आय के वितरण की असमानता को कैसे दूर करते हैं? ये सभी शक्तियां और तत्व आर्थिक उत्पादन के लिए उत्प्रेरणाओं का निर्धारण करते हैं। भारतीय संगठन और कंपनियां कृषि विकास के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। वास्तव में अनेकों प्रतिष्ठित कंपनियां जैसे **टाटा, मफतलाल, लार्सन एण्ड टुब्रो** एवं **हिन्दुस्तान लीवर लि.** भारतीय कषि एवं ग्रामीण विकास में अपनी प्रमुख भूमिका निभाते हैं। कार्पोरेट्स आधुनिक विज्ञान और तकनीक में लाभों को ला सकती है और विश्व बाजार में कृषि–विकास में वृद्धि लाकर ग्रामीण विकास को प्रोत्साहित कर सकती है।

क्षेत्रीय विकास के लिए मनोवैज्ञानिक व सामाजिक आवश्यकताओं का होना उसी प्रकार जरुरी है, जिस प्रकार आर्थिक आवश्यकताओं का। इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय विनियोग नीति पर राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व आर्थिक प्रवृत्तियों का संयुक्त प्रभाव पड़ता है। किसी देश का आर्थिक विकास मूलरूप से इस बात पर निर्भर करता है कि लोगों में नूतन मूल्यों व संस्थाओं को अपनाने की कितनी प्रबल इच्छा है। वास्तव में गैर आर्थिक तत्वों के रूप में यह सामाजिक, मनोवैज्ञानिक व संस्थागत तत्व आर्थिक विकास की उत्प्रेरक शक्तियां हैं। प्रो. रागनर नर्कसे का मानना है कि ''आर्थिक विकास का मानवीय मूल्यों, सामाजिक प्रवृत्तियों, राजनैतिक दशाओं तथा ऐतिहासिक घटनाओं से एक घनिष्ठ संबंध रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार ''एक उपयुक्त वातावरण की अनुपस्थिति में आर्थिक प्रगति असंभव है। ग्रामीण–विकास के लिए आवश्यक है कि लोगों में प्रगति की प्रबल इच्छा हो, वे उसके लिए हर संभव त्याग करने को तत्पर हों, वे अपने आप को नए विचारों के अनुकूल ढालने के लिए जागरुक हों और उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व वैधानिक संस्थाएं इन इच्छाओं को कार्यरूप में परिणित करने में सहायक हों।'' अल्प विकसित देशों के आर्थिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण, वास्तव में सामाजिक व संस्थागत तत्व ही रहे हैं। इन देशों में जाति प्रथा, छुआछूत, संयुक्त परिवार प्रणाली, उत्तराधिकार के नियम, भूधारण की दोषपूर्ण व्यवस्था, भूमि व सम्पत्ति के प्रति मोह, अन्धविश्वास, रुढ़िवादिता, धार्मिक पाखण्ड, परिवर्तन के प्रति विरक्ति और उसका विरोध, सामाजिक अपव्यय तथा झूठी शान शौकत जैसे तत्वों ने आर्थिक विकास के मार्ग में सदैव बाधाएं उत्पन्न की हैं। इन देशों का आर्थिक विकास तब तक सम्भव नहीं हो सकता, जब तक कि इन सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक संस्थाओं का नए सिरे से नव निर्माण न कर दिया जाय। अतः इस दृष्टि से आवश्यक है कि लोगों की रुढ़िवादी धारणाओं को परिवर्तित किया जाए, उनमें भौतिक दृष्टिकोण पैदा किए जाएं और शिक्षा का विस्तार किया जाए, ताकि ये लोग अपने आप को नए विचारों के अनुकूल ढाल सकें।

विकास का स्तर किसी देश के सामाजिक ढांचे पर निर्भर करता है। बहुत से सामाजिक मूल्य एवं संस्थाएं ऐसी होती हैं, जो विकास की प्रक्रिया में बाधाएं डालती हैं। कुछ कारक इसमें सहायक सिद्ध होते हैं। भारत में भी कुछ संस्थाएं एवं मूल्य ऐसे हैं, जो विकास की प्रक्रिया को धीमा कर रहे हैं। जाति व्यवस्था के कारण सम्पूर्ण समाज छोटी–छोटी इकाइयों में विभाजित हो गया है। इस प्रकार का विभाजन आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करता है। योजनाओं में बेकारी की समस्या को दूर करने के लिए अनेकों कार्यक्रम बनाए गए हैं। व्यवसाय के नवीन मार्ग निकाले गए हैं, जो उसके जातीय व्यवस्था से अलग है। जैसे मुर्गीपालन, सुअरपालन का कार्य सभी जातियां करने को तैयार नहीं होती। संयुक्त परिवार

व्यवस्था भी विकास में बाधाएं डाल रही हैं जब दो या तीन, पीढ़ी के व्यक्ति साथ रहते हैं तो उसे संयुक्त परिवार व्यवस्था कहते हैं। संयुक्त परिवार व्यवस्था अपने सदस्यों को हर प्रकार का संरक्षण प्रदान करती है। उसके भोजन, वस्त्र, सुख सुविधा का प्रबन्ध करती है। संयुक्त परिवार में मिलने वाली यह सुरक्षा ही विकास में बाधक है, क्योंकि परिवार के सभी सदस्य कठिन परिश्रम नहीं करते। कुछ बिना कार्य किए परिवार पर निर्भर रहते हैं। इस प्रकार से सभी सदस्यों का योगदान विकास कार्यों में नहीं मिल पाता, परिवार से मिलने वाली सुरक्षा निष्क्रियता बढ़ाने में सहायक हो जाती है। इस प्रकार संयुक्त परिवार व्यवस्था एकाकी परिवार की अपेक्षा विकास कार्यों में बाधक है। गतिशीलता की कमी भी विकास में बाधक है। गतिशीलता दो प्रकार की होती है एक व्यावसायिक गतिशीलता, जिसका अभिप्राय यह है कि अपने पैतृक व्यवसाय को छोड़कर अन्य कोई व्यवसाय करना। दूसरा स्थानीय गतिशीलता है। इसका अर्थ है अपने मूल निवास स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर बसना। भारत में स्थानीय गतिशीलता की कमी है, क्योंकि व्यक्ति अपने गांव, जिला तथा प्रदेश को छोड़कर दूसरे स्थान पर जाकर काम करना पसन्द नहीं करता। इस गतिशीलता की कमी का परिणाम यह होता है कि बहुत से व्यक्तियों को रोजगार नहीं मिल पाता तथा निर्धनता में जीवन काटना पड़ता है।

धन का अनुचित संचय भी विकास में बाधक है। भारत में जेवर बढ़ाने की प्राचीन परम्परा है। जो धन जेवर बनाने में लग जाता है, उसका पूंजी निवेश नहीं हो पाता, वह विकास कार्यों में नहीं लग पाता। यदि यही धन पोस्ट आफिस तथा बैंकों में जमा कर दिया जाय तो व्यक्ति विशेष तथा सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए हितकारी होगा। ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक तथा पोस्ट आफिस दूर होने के कारण लोग अपना पैसा जमा नहीं कर पाते। सम्पूर्ण धनराशि की बचत नहीं हो पाती, जो विकास के दृष्टिकोण से अनुपयुक्त तथा अनुत्पादक है। हमारे यहां त्यौहारों तथा उत्सवों पर आवश्यकता से अधिक व्यय कर दिया जाता है। जन्म दिन मनाने की एक नयी परम्परा चल पड़ी है। यह धन यदि विकास कार्यों में लग सके तो राष्ट्र और अधिक सम्पन्न हो सकता है। साहस की कमी भी विकास में बाधाएं डालती हैं। हम उसी रोजगार या व्यवसाय को करना पसन्द करते हैं, जिसमें हानि होने की सम्भावना न हो। काम की अपेक्षा आराम को प्रोत्साहन दिया जाता है। व्यक्ति उस कार्य को करना पसन्द करता है जो सरल हो, कठिन परिश्रम न करना पड़े। इनके अलावा कुछ और भी सामाजिक कारक हैं, जो विकास में बाधा पहुंचाते हैं। ये कारक विकास प्रक्रिया के कारण ही जन्म लेते हैं, और विकास पर अनुचित प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिए नगरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण गन्दी बस्तियों का निर्माण होता है, इसमें रहने वालों का स्वास्थ्य प्रायः खराब रहता है, क्योंकि व्यक्ति को शुद्ध जलवायु नहीं मिल पाती। व्यक्ति रोग से पीड़ित हो जाता है। इससे उसकी कार्य क्षमता घट जाती है। कार्य क्षमता घटने से व्यक्ति निर्धन एवं ऋणी हो जाता है, उसका बहुत सा धन चिकित्सा पर व्यय होने लगता है। बीमार रहने से उसकी आय भी घट जाती है तथा इसी चक्रीय क्रम की पुनरावृत्ति से विकास प्रभावित होता है।

वर्तमान समय में निजी पूंजी संचय का एक प्रमुख अंग है। वृहद् अन्तर्राष्ट्रीय औद्योगिक इकाइयां भारत सहित विभिन्न देशों में अपनी शाखाओं को स्थापित कर चुकी हैं। भारी मात्रा में वित्तीय संसाधनों का हस्तांतरण अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से होता है : जैसे विश्व बैंक, एशिया विकास बैंक तथा अन्य संगठन विदेशी सहायता को एक सरकार से दूसरे सरकार को हस्तांतरित करते हैं। भारी मात्रा में अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी अनुदानों एवं आसान किस्तों पर उपलब्ध है। अर्ध विकसित देशों में अवस्थापना सुविधाओं जैसे शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं पोषण सुविधाओं को उपलब्ध कराने हेतु अन्तर्राट्रीय वित्तीय संस्थाओं द्वारा आसान ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराया जा रहा है जो पूंजी संचय का एक सशक्त माध्यम है।

भारत के ग्रामीण परिक्षेत्र में पूंजी का सशक्त अभाव है, यही कारण है कि ग्रामीण विकास में अनेकों बाधाएं मुंह बाए खड़ी है। ग्रामीण क्षेत्रों में पूंजी निर्माण की दर मंद बनी हुई है, ग्रामीण विकास के लिए अपेक्षित पूंजी निर्माण की दर प्राप्त करना कठिन है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में छोटी–छोटी बचतों को प्रोत्साहन देकर, बचत की प्रेरणाएं प्रदान कर पूंजी निर्माण की दर को बढ़ाना परमावश्यक है। जिससे ग्रामीण विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। अतः यदि हम क्षेत्रीय विकास की परिकल्पना को साकार करना चाहते हैं तो इन सामाजिक एवं संस्थानिक कारकों की ओर ध्यान देना होगा। भारत में विकास की गति को तीव्र बनाने के लिए विवेकशीलता, प्रजातंत्र के सिद्धान्तों पर कार्य और आधुनिकीकरण वांछनीय है।

संदर्भ–

1. महबूबुलहक, ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1999, पृ0–14
2. रे, देवराज, डेवलपमेंट इकोनॉमिक्स, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1998, पृ0–397–398
3. माइकल, पी. टोडारो, इकोनॉमिक्स फार ए डेवलपिंग वर्ल्ड (ऐन इन्ट्रीडक्शन टू प्रिंसिपुल्स, प्रॉबलम्स एण्ड पोलिसीज फार डेवलपमेंट), सेख वासटांस प्रिंटिंग प्रेस, हांगकांग, 1977, पृ0–108
4. रे, देवराज, उपरोक्त, पृ0–236–237

RRIJM 2015, All Rights Reserved

5. रिपोर्ट ऑन स्माल स्केल इण्डस्ट्रीज, सिडबी, 1999, पृ0–77
6. माइकल, पी. टोडारो, उपरोक्त, पृ0–106–107
7. माइकल, पी. टोडारो, उपरोक्त, पृ0–109–110
8. फखरुल, इस्लाम, विकास में बाधक सामाजिक कारक, विकास परिचर्चा, (अंक–1), जुलाई–दिसम्बर, 1993, पृ0–63–64
9. वर्धन, सी. अशोक, पिपुल्स पार्टीसिपेशन इन प्लानिंग, इण्डियन जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वेल्यूम–36, नं0–01, जनवरी–मार्च, 1999, पृ0–92
10. ट्रम्बले, तथा अन्य, गवर्नेन्स एण्ड रिप्रजेन्टेशन, ए स्टडी ऑफ वूमेन एण्ड लोकल सेल्फ गवर्नमेण्ट, इण्डियन जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वाल्यूम–44, जुलाई–सितम्बर, 1995, पृ0–454–467
11. सिंघल, सी.एस., कम्युनिटी पर्टिसिपेशन इन वाटर मैनेजमेण्ट, कुरुक्षेत्र, अप्रैल, 1999, पृ0–16–17

RRIJM 2015, All Rights Reserved